असुरक्षा में घिरे प्रवासी कामगार

खाड़ी देशों में काम करने वाले भारतीय मजदूरों के साथ समस्या यह है कि अनधिकृत एजेंटों द्वारा मोटी रकम लेकर जाली पंजीकरण करा कर खाड़ी देशों में भेजने का मार्ग प्रशस्त कर दिया जाता है। पकड़े जाने पर मेजबान देश कानून के हिसाब से काम कर रहा होता है तो भारत के सामने समस्या होती है कि उसे भारतीय श्रमिकों के हित में काम करने के लिए कैसे कहे।

विदेश मंत्रालय ने हाल में प्रवासी भारतीय मजदूरों से संबंधित कुछ आंकड़े जारी किए हैं। इनमें बताया गया है कि विदेशों, खासकर खाड़ी देशों में काम करने वाले मजदूरों, कामगारों की असामयिक मौत की घटनाएं सामने आ रही हैं। रिपोर्ट में बताया गया है कि खाड़ी देशों में हर दो दिन में तीन भारतीय मजदूरों की मौत आत्महत्या, बीमारी और सड़क दुर्घटनाओं में हो रही है। ज्यादातर मामले तो आंध्र प्रदेश से जुड़े कामगारों के हैं। यह तथ्य इस बात को भी दर्शाता है कि प्रवासी भारतीय श्रमिक विदेशों में किन विपरीत परिस्थितियों में काम कर रहे हैं। पिछले तीन वर्षों में खाड़ी देशों में काम करने वाले आंध्र प्रदेश के एक हजार 656 श्रमिकों की मौत हो चुकी है। ये श्रमिक मुख्य रूप से सफाई कर्मचारी और घरेलू नौकर के रूप में अपनी सेवाएं दे रहे थे। श्रमिकों की सर्वाधिक मौतें कुवैत (488), सऊदी अरब (478), यूएई (351), ओमान (153), कतर (108) और बहरीन (78) में हुई हैं।

विदेश मंत्रालय ने यह स्पष्ट किया है कि खाड़ी देशों में काम करने वाले कामगारों को बचाने शिविरों के जरिए मिशन के तहत जागरूकता अभियान चलाए जा रहे हैं। यहां काम करने वाले भारतीयों को लंबी और अत्यधिक कार्यावधि, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव और सामाजिक सुरक्षा का अभाव जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। यह तो रही आंकड़ों की बात। इससे आगे एक बड़े परिदृश्य की तरफ ध्यान देना होगा। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रभाग और इंडिया स्पेंड की रिपोर्ट को देखें तो पूरी दुनिया में सबसे बड़ा कामगार समुदाय भारतीय प्रवासियों का है। इनके अनुसार कामगार भारतीयों की संख्या करीब पौने दो करोड़ है। संयुक्त राष्ट्र की विश्व प्रवास रिपोर्ट-2018 में बताया गया है कि प्रवासी भारतीय कामगारों की संख्या एक करोड़ 56 लाख है। संयुक्त अरब अमीरात में अकेले 35 लाख भारतीय कार्यरत हैं, वहीं सऊदी अरब में 25 लाख, ओमान एवं कुवैत में 12 लाख प्रवासी हैं। ऐसे में इनको मिलने वाली सुविधाएं और इनकी सुरक्षा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है।

दक्षिण भारतीय राज्यों- केरल, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश के साथ ही महाराष्ट्र से खाड़ी देशों में सस्ते श्रमिक के रूप में काम करने के लिए जाने वाले भारतीयों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जैसे- वीजा, पासपोर्ट की औपचारिकताएं, विदेश में जब्ती, नस्लीय भेदभाव, जासूसी के आरोप, ट्रांसनेशनल इस्लामिक टेरर नेटवर्क में संलग्नता के आरोप, मालिकों द्वारा उचित मजदूरी न देना, आवश्यकता से अधिक काम लेना, स्वदेश वापसी में अड़चनें पैदा करना आदि। प्राकृतिक आपदा, मानव तस्करी जैसी चुनौतियों का भी इन्हें सामना करना होता है। केवल एक अकेले कुलभूषण जाधव का मामला प्रवासी भारतीयों की सुरक्षा से जुड़े गंभीर सवाल खड़े करता है। प्रवासी भारतीय कामगारों को विदेश ले जाकर काम करने की परिपाटी ब्रिटेन ने अपने औपनिवेशिक शासन काल में डाली थी। भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका, श्रीलंका, फीजी, मॉरीशस जैसे देशों में चाय बागानों में श्रमिक के रूप में अंग्रेज जबर्दस्ती ले गए थे। इसके बाद भारतीय मजदूरों को रंगभेद, नस्लभेद और सांस्कृतिक संघर्षों का सामना करना पड़ा। श्रीलंका ने 'सिंहलीज ओनली' बिल साल 1956 में पास कर तमिलों को उनके अधिकार से वंचित किया था। इसके बाद 1972 में भी बने श्रीलंकाई संविधान में तमिलों के भाषाई, धार्मिक सांस्कृतिक अधिकारों की उपेक्षा की गई।

इसी प्रकार फीजी में वर्ष 1987 में तख्ता पलट कर भारतीयों को दोहरे दर्जे की नागरिकता से संतुष्ट करने का प्रयास किया गया। ऐसे कई देशों में अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जहां प्रवासी भारतीय कामगारों को नागरिकता, भाषा, संस्कृति के साथ बुनियादी सुविधाओं के नाम पर उपेक्षा का सामना करना पड़ा। भारत सरकार ने 1990 के पूर्व कुछ अवसरों पर विदेशों में कुछ अभियानों के जरिए भारतीयों के हितों की सुरक्षा की पुरजोर कोशिश की शुरू की थी। श्रीलंका में भारत ने ऑपरेशन पवन के माध्यम से शांतिवाहिनी सेना को भेजकर तमिलों के हितों की सुरक्षा का प्रयास किया। इसी प्रकार भारत सरकार ने पूर्वी पाकिस्तान यानी बांग्लादेश के नागरिकों से पश्चिम बंगाल के नागरिकों के सांस्कृतिक संबंधों के मद्देनजर ऑपरेशन सर्च लाइट के जरिए बांग्लादेश के निर्माण में भूमिका अदा की।

मालदीव में ऑपरेशन कैक्टस के जरिए भारत सरकार ने वहां के लोगों की मदद की। मालदीव में आज प्रवासी भारतीय कामगारों की एक अच्छी-खासी आबादी निवास करती है। वर्ष 1990 के दशक में उदारीकरण, निजीकरण व वैश्वीकरण की शुरुआत ने वैश्विक प्रवास को आसान बना दिया। वस्तु, सेवा, पूंजी और श्रम सभी का मुक्त प्रवाह इस सीमारहित विश्व में होने लगा। ऐसे में पूंजी निर्माण, निवेश, समृद्धि के एक तरफ जहां नए अवसर सृजित हुए, वहीं भारतीय श्रमिकों के सामने ढेरों मुश्किलें भी आनी शुरू हुईं। खाड़ी देशों में ऐसी घटनाएं ज्यादा होने लगीं। प्रवासी कामगारों के हितों की सुरक्षा के लिए भारत ने 1980 के दशक में ही कतर और जॉर्डन के साथ श्रम समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। 2004 में अप्रवासी भारतीय मामलों के मंत्रालय के गठन के बाद भारत ने इस मसले पर ध्यान देना शुरू किया। संयुक्त अरब अमीरात के साथ 2006 में और कुवैत के साथ 2007 में एमओयू (करार) पर हस्ताक्षर भारत सरकार ने किए। 2007 में कतर के साथ श्रम मानकों पर एक अतिरिक्त प्रोटोकॉल पर भारत ने हस्ताक्षर किए।

2008 में ओमान व 2009 में मलेशिया के साथ श्रम मानकों पर करार किया गया था। भारत ने कई देशों के साथ सामाजिक सुरक्षा सहयोग समझौते किए हैं। इनमें कुछ प्रमुख देश हैं- ऑस्ट्रेलिया, जापान, फ्रांस, बेल्जियम, डेनमार्क, नार्वे, चेक गणराज्य हंगरी और कोरिया आदि। भारत सरकार ने भारतीय समुदाय कल्याण कोष का भी गठन कर रखा है जिसका उद्देश्य विदेशों में विपत्ति में घिरे भारतीयों को मदद पहुंचाना है। तीन अगस्त 2018 को ब्रिक्स देशों ने सामाजिक सुरक्षा और श्रमिकों के कल्याण को लेकर हस्ताक्षर किए थे। भारत सरकार के उत्प्रवास अधिनियम-1983 के मुताबिक भारतीय पासपोर्ट धारकों की ईसीआर (एमिग्रेशन चेक रिक्वायर्ड) श्रेणी का प्रावधान है कि 18 देशों में जाने के लिए प्रवासी भारतीय मामलों के मंत्रालय के प्रोटेक्टर ऑफ एमिग्रेंट्स ऑफिस से उत्प्रवासन मंजूरी लेना जरूरी है। ऐसे देशों में सभी खाड़ी देश शामिल हैं।

उत्प्रवासन मंजूरी मिलने की एक आवश्यक शर्त यह है कि खाड़ी या अन्य देशों में जाने वाला श्रमिक अपने समझौते अथवा रोजगार संविदा का विवरण उपलब्ध कराए जिसमें यह भी स्पष्ट हो कि जिस देश में वह काम करने जा रहा है वहां उसे कितना भुगतान किया जाएगा। इस समझौते पर विदेशी नियोक्ता और इच्छुक कामगार के हस्ताक्षर होने चाहिए। भारत में उत्प्रवासन मंजूरी के लिए इस संविदा या हस्ताक्षर का रिकॉर्ड सक्षम प्राधिकारी के सामने पेश किया जाए, तब जाकर फर्जी एजेंटों द्वारा अवैध पंजीकरण और मंजूरी की समस्या का समाधान हो सकेगा।

राहुल वर्मा
(स्वतंत्र लेखाकार)

सम्पादकीय

ऐसी दोषपूर्ण कॉलिजियम व्यवस्था से छुटकारा मिलना चाहिए जिसमें जज ही जज की नियुक्ति करते हों

उच्चतर न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति की मौजूदा कॉलिजियम व्यवस्था को लेकर राज्यसभा में सवाल उठने पर हैरानी नहीं। हैरानी तो तब होती जब संसद कॉलिजियम को लेकर मौन धारण किए रहती, लेकिन इससे भी संतुष्ट नहीं हुआ जा सकता कि उच्च सदन में शून्य काल के दौरान यह मांग उठी कि उच्च न्यायालयों एवं उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों का चयन अखिल भारतीय परीक्षा के जरिये किया जाए। यह अच्छा हुआ कि इस मसले पर विभिन्न दलों के सांसदों की दिलचस्पी को देखते हुए राज्यसभा के सभापति वेंकैया नायडू ने यह कहा कि न्यायपालिका, विधायिका एवं कार्यपालिका के अधिकारों और सीमाओं पर व्यापक चर्चा करने की जरूरत है।

वास्तव में इस पर केवल व्यापक चर्चा ही नहीं होनी चाहिए, बल्कि ऐसी कोई व्यवस्था भी बननी चाहिए जिससे उस दोषपूर्ण कॉलिजियम से छुटकारा मिले जिसके तहत न्यायाधीश ही न्यायाधीशों की नियुक्ति करते हैं। ऐसा किसी लोकतांत्रिक देश में नहीं होता। ऐसा केवल भारत में ही होता है और वह भी तब जब खुद सुप्रीम कोर्ट यह स्वीकार कर चुका है कि कॉलिजियम व्यवस्था दोषपूर्ण है। कायदे से इस स्वीकारोक्ति के बाद या तो इस व्यवस्था के दोष दूर किए जाने चाहिए थे या फिर न्यायाधीशों की नियुक्ति की नई व्यवस्था बननी चाहिए थी। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में से किसी को यह बताना चाहिए कि ऐसा अब तक क्यों नहीं हो सका है? यह लोकतांत्रिक मूल्यों और मर्यादाओं के अनुकूल नहीं कि न्यायाधीश अपने उत्तराधिकारियों की नियुक्तियां खुद करें।

न्यायिक तंत्र में सुधार के लिए कई कदम उठाने की जरूरत है। ऐसी व्यवस्था खत्म होनी चाहिए जहां जज ही जज की नियुक्ति करते हों। कॉलिजियम व्यवस्था पर संसद में उठे सवाल।

निस्संदेह यह सुखद नहीं रहा कि मोदी सरकार ने अपने पहले कार्यकाल में संविधान संशोधन के जरिये जिस राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग का गठन किया था उसे सुप्रीम कोर्ट ने असंवैधानिक ठहरा दिया। इस फैसले से इस आयोग के गठन के लिए की गई लंबी कवायद व्यर्थ साबित हुई। यह संभव है कि इस आयोग के कुछ प्रावधान न्यायसंगत न रहे हों, लेकिन क्या यह बेहतर नहीं होता कि उन्हें सुसंगत बनाने पर जोर दिया जाता? कम से कम अब तो यह काम किया ही जाना चाहिए। इसलिए और भी, क्योंकि कॉलिजियम व्यवस्था के तहत होने वाली नियुक्तियों को लेकर सवाल उठते ही रहते हैं। चूंकि यह व्यवस्था पारदर्शी नहीं इसलिए सवाल कुछ ज्यादा ही उठते हैं।

जहां तक निचली अदालतों में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए अखिल भारतीय न्यायिक सेवा का गठन किए जाने की मांग है तो इसका समय आ चुका है। सच तो यह है कि अब तक इस सेवा का गठन हो जाना चाहिए था। अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के गठन के साथ ही कॉलिजियम व्यवस्था को दुरुस्त करने का काम प्राथमकिता के आधार पर किया जाना चाहिए। ऐसा करते समय यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि न्यायिक तंत्र में सुधार के लिए और भी कई कदम उठाने की जरूरत है, क्योंकि लोगों को समय पर न्याय सुलभ नहीं हो रहा है। भारत सरीखे लोकतांत्रिक देश में इससे बड़ी विडंबना और कोई नहीं हो सकती कि लोग अदालत का दरवाजा खटखटाने के पहले इसे लेकर आशंकित रहें कि उन्हें वहां से समय पर न्याय मिलेगा या नहीं? आज ऐसी ही स्थिति है। जब तक यह स्थिति बनी रहती है, न्यायपालिका सवालों से घिरी रहेगी।